रामदाना की वैज्ञानिक खेती

चौलाई एक बहुउद्देषीय धान्य फसल है जिसका पत्तियों से लेकर तना एवं दाना सभी भाग उपयोग में लाए जाते हैं। सब्जी एवं दानों के लिए चौलाई की अलग–2 प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। जन–जातीय क्षेत्रों में

चौलाई एवं गेहूँ के आटे से बनी रोटी को एक पूर्ण आहार माना जाता है। इसके दानों को फुलाकर इससे कई तरह के खाद्य पदार्थ विषेष रूप से लड्डू बनाना अधिक प्रचलित है। विकसित देषों जैसे अमेरिका में चौलाई से कई प्रकार के बेकरी खाद्य पदार्थ जैसे बिस्कुट, पेस्ट्री, केक आदि बनाये जाते हैं। विष्वभर में चौलाई को एक अल्प प्रयुक्त फसल के रूप में उगाया जाता है परन्तु दक्षिण अमेरिका में इसका प्रचलन अधिक है। भारतवर्ष में इसकी खेती जम्मू–कष्मीर से लेकर तमिलनाडु तथा गुजरात से लेकर उत्तर–पूर्वी भारत तक की जाती है। उत्तर–पष्चिमी हिमालय क्षेत्र में चौलाई की खेती अधिक प्रचलित है। चौलाई पर्वतीय क्षेत्रों की प्रमुख नकदी फसल है जिसको रामदाना, चूआ तथा मार्सा के नाम से जाना जाता है। मध्य में ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी खेती काफी प्रचलित है। पर्वतीय क्षेत्रों में असिंचित पथरीली मिट्टी जिनमें उर्वरकता की कमी, अधिक अम्लीयता तथा अनिष्चित काल वर्षा से उत्पन्न सूखे के कारण अधिकांष फसलें या तो उगती नहीं या अधिक उपज नहीं देती हैं। चौलाई की फसल विषेष गुणों तथा सूखा सहन करने की अपार क्षमता के कारण अधिक उपज देती है।

उपयोग के अनुसार चौलाई की विभिन्न प्रजातियों को निम्नलिखित वर्गो में बाँटा गया है

क्र.सं.	उपयोग	प्रजाति
1.	दानों के लिए	अमरेन्थस हाईपोकान्ड्रएकस, अमरेन्थस कारडेन्ट्स, अमरेन्थस एडूलिस, अमरेन्थस कोरून्टस
2.	सब्जी के लिए	अमरेन्थस डूबियस, अमरेन्थस वोलीटन, अमरेन्थस विरीडीस, अमरेन्थस ट्राई कलर
3.	सब्जी एवं चारे के लिए	अमरेन्थस हाइब्रिड्स
4.	जंगली प्रजाति	अमरेन्थस स्पाइनोसस

भारतवर्ष में इसके उत्पादन का क्षेत्र 40–50 हजार हैक्टेयर आंका गया है जो खासतौर से गुजरात प्रदेष में 6000 हैक्टेयर से 6000–10000 टन उत्पादन हर वर्ष होता है। गुजरात के बनासकांटा जिले के किसान आलू एवं गेहूँ की जगह अब चौलाई की खेती करने लगे हैं।

चौलाई के पोषण तत्वों का महत्व :

शाकाहारी लोगों के लिए चौलाई एक विषेष खाद्य स्रोत है जिसकी गुणवत्ता मछली में उपलब्ध प्रोटीन के बराबर होती है। गेहूँ की तुलना में चौलाई के दानों में दस गुणा से भी अधिक कैल्षियम, 3 गुणा से भी अधिक वसा तथा दुगने से भी अधिक लोहा होता है। चौलाई के दानों में गेहूँ, धान तथा मक्का के दानों की तुलना में ट्रिप्टोफेन, मिथीओनीन तथा लाईसीन जैसे आवष्यक अमीनो अम्लों की मात्रा भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। बीजों की उत्तम कोटि के प्रोटीन से अमा–1 जीन चौलाई से वियुक्त करके चावल एवं आलू की फसलों में समाविष्ट किया गया है।

चौलाई की उपयोगिताः

- चौलाई एक बहुउद्देषीय खाद्य पौधा है इसकी पत्तियाँ सब्जी के रूप में खाई जाती हैं।
- इसके दानों को फुलाकर कई प्रकार के बेकरी, खाद्य पदार्थ एवं लड्डू बनाये जाते हैं।
- इसकी पत्तियों में ऑक्सलेट एवं नाइट्रोजन की मात्रा कम होने के कारण यह पौष्टिक एवं सुपाच्य चारा माना जाता है।
- जन–जातियाँ द्वारा चौलाई को खसरा, गुर्दे की पसली का इलाज, सर्प दंत एवं मांस को संरक्षित करने आदि के उपयोग में लाया जाता है।
- चौलाई से प्राप्त तेल में स्क्वालिंन नामक पदार्थ होता है जिसे सौन्दर्य प्रसाधनों, दवा तथा कम्प्यूटर की डिस्क की चिकनाई में प्रयोग करने के काम लिया जाता है।

उन्नत किस्में:

चौलाई की विषेषताओं एवं गुणों को देखते हुए अखिल भारतीय अल्प प्रयुक्त फसल अनुसंधान परियोजना के तहत इसे समन्वित षोध हेतु चुना गया और पिछले 28 वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों से इसका जननद्रव्य इकट्ठा किया गया है। विभिन्न लक्षणों के प्रति जननद्रव्यों का मूल्यांकन किया गया तथा जननद्रव्यों का प्रयोग उन्नत किस्मों को विकसित करने के लिए किया गया। विभिन्न क्षेत्रों में चौलाई की उन्नत खेती की सस्य क्रियाओं

का मानकीकरण किया गया। जिसमें 6 किस्में पर्वतीय क्षेत्रों के लिए तथा 7 पठारी क्षेत्रों के लिए विकसित की गई हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है–

पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उन्नत किस्में :

अन्नपूर्णा (आई.सी. 42258–1): इस किस्म का विकास उत्तरांचल में पौढ़ी गढ़वाल से एकत्रित जननद्रव्य आई.सी. 42258–1 में से छँटाई करके राष्ट्रीय पादप आनुवांषिक संसाधन ब्यूरों के षिमला क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा किया गया था। इसका अनुमोदन मध्यम एवं ऊँची हिमालयन पहाड़ियों में खेती के लिए सन् 1984 में हुआ। इसकी औसतन पैदावर 22.50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म अधिक प्रोटीन (15 प्रतिषत) के साथ सूखा सहन करने की क्षमता भी रखती है।

पी.आर.ए.–1 (8801): गोविन्द बल्लभपंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विष्वविद्यालय के पर्वतीय परिसर रानीचौरी द्वारा विकसित इस किस्म का अनुमोदन उत्तरांचल प्रदेष के लिए सन् 1997 में किया गया था। इसके बीजों में 13–15 प्रतिषत प्रोटीन एवं 9.2 प्रतिषत तेल की मात्रा पाई जाती है। इसकी औसतन पैदावार 14. 50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

पी.आर.ए.–2 (9001): इस किस्म का विकास उत्तरांचल प्रदेष में टिहरी जिले के स्थानीय जगह सोलनी से एकत्रित जननद्रव्य में से छँटाई करके गोविन्द बल्लभपंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विष्वविद्यालय के पर्वतीय परिसर रानीचौरी द्वारा किया गया था। इस किस्म का अनुमोदन जम्मू एवं कष्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण उत्तर–पष्चिमी हिमालय क्षेत्रों में खेती के लिए सन् 2000 में हुआ। इसके पौधे 138 से.मी. तक बढ़ते हैं तथा लगभग 133 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन पैदावार 14.50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। इस किस्म के बीजों में उच्चतम प्रोटीन (14–15 प्रतिषत) एवं तेल (12 प्रतिषत) पाया जाता है।

पी.आर.ए.–3 (9401): गोविन्द बल्लभपंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विष्वविद्यालय के पर्वतीय परिसर रानीचौरी द्वारा संकर पद्धति से पी.आर.ए.–8801 एवं स्वर्णा से इस किस्म का अनुमोदन जम्मू–कष्मीर के अलावा उत्तर–पष्चिमी हिमालय क्षेत्र के लिए सन् 2003 में किया गया था। इसके पौधे लगभग 140 से.मी. लम्बे

तालिका 1: पोषक तत्वों के लिहाज से चौलाई, गेहूँ एवं चावल की तुलना

पोषक तत्व	चौलाई	गेहूँ	चावल
प्रोटीन (ग्रा./100 ग्रा.)	15.6	11.8	6.8
वसा (ग्रा./100 ग्रा.)	6.3	1.5	0.5
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	410	346	345
रेशा (ग्रा./100 ग्रा.)	2.4	1.2	0.2
खनिज लवण (ग्रा./100 ग्रा.)	2.9	1.5	0.7
कैल्षियम (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	222	41	10
लाईसिन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	5.5	2.9	3.7
मिथायोनिन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	2.6	1.5	2.4
सिस्टीन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	2.1	2.2	1.4
आईसोल्युसिन (ग्रा./100 ग्रा. प्रोटीन)	3.9	3.3	3.9
लौह (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	13.9	3.5	1.8

तालिका 2: चौलाई की उन्नत किस्मों में तुलनात्मक पोषक तत्व

उन्नत किस्में	प्रोटीन	लाईसिन	वसा
अन्नपूर्णा	12.20	5.40	62.10
जी.ए.–1	13.23	4.83	–
जी.ए.–2	13.70	4.50	62.40
स्वर्णा	12.57	5.23	58.90
पी.आर.ए.–1	13.10	4.80	–
पी.आर.ए.–2	15.00	4.90	60.20
पी.आर.ए.–3 (9401)	13.60	5.60	60.20
आई.सी.–35407 (दुर्गा)	14.10	4.80	55.80
बी.जी.ए.–2	13.57	4.87	–

होते हैं। यह किस्म लगभग 135 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं जिसकी औसतन पैदावार 16.50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। इस किस्म में रोग एवं कीड़ों का प्रकोप नहीं होता है।

दुर्गा (आई.सी. 35407): इस किस्म का विकास हिमाचल प्रदेष से एकत्रित जननद्रव्य एन.आई.सी. 22535 में से छँटाई करके राष्ट्रीय पादप आनुवांषिक संसाधन ब्यूरों के षिमला क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा किया गया था। इस किस्म का अनुमोदन हिमाचल प्रदेष के उत्तर–पष्चिमी पर्वतीय क्षेत्र एवं उत्तरांचल में खेती के लिए सन् 2006 में हुआ। इसके पौधे 170 से.मी. तक बढ़ते हैं तथा लगभग 125 दिन में किस्म पककर तैयार हो जाती हैं। इसकी औसतन पैदावार 21.0 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म कीड़े एवं रोगों के प्रकोप से सुरक्षित है।

वी.एल. चुआ–44: विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान अल्मोड़ा द्वारा विकसित इस अगेती किस्म (110–120 दिन) का अनुमोदन उत्तरांचल प्रदेष के लिए सन् 2006 में किया गया था। इसकी औसतन पैदावार 13.20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

मैदानी क्षेत्रों की लिए उन्नत किस्में:

गुजरात अमरेन्थ–1 (जी.ए.–1): इस किस्म का विकास गुजरात के स्थानीय जगह से एकत्रित जननद्रव्य मे से छँटाई करके एस.डी.ए.यू., एस.के. नगर द्वारा किया गया था। इस किस्म का अनुमोदन गुजरात एवं महाराष्ट्र में खेती करने के लिए सन् 1991 में हुआ। इसके पौधे लगभग 100–110 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं और औसतन पैदावार 19.50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इस किस्म में कीड़ें एवं रोगों का प्रकोप नहीं होता है।

सुवर्णा : यू.ए.एस., बंगलौर द्वारा विकसित इस किस्म का अनुमोदन सन् 1992 में किया गया था। इसके पौधे 120–130 से.मी. ऊँचे और 80–90 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म कर्नाटक, उड़ीसा, महाराष्ट्र, तमिलनाडु एवं गुजरात राज्यों में खेती के लिए उपयुक्त है।

गुजरात अमरेन्थ–2 (जी.ए.–2): गुजरात राज्य के स्थानीय जगह रसना, जिला बनासकांटा से एकत्रित जननद्रव्य में से छँटाई करके एस.डी.ए.यू., एस.के. नगर द्वारा सन् 2000 में विकसित किया गया। इस किस्म का अनुमोदन गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्यों में खेती करने के लिए किया गया है। यह किस्म जी.ए.–1 से अगेती है और 90 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 23 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

कपिलासा (बी.जी.ए.–2) : इस किस्म का विकास उड़ीसा प्रदेष में स्थानीय जगह से एकत्रित जननद्रव्य में से छँटाई करके ओ.यू.ए.टी., भुवनेष्वर द्वारा सन् 2005 में किया गया था जिसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 13.50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। इसके पौधे 165 से.मी. ऊँचाई के होते हैं और 95 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। यह किस्म उड़ीसा, तमिलनाडु, कर्नाटक राज्यों में खेती करने के लिए उचित मानी गई है। इस किस्म में कीट एवं रोगों का कोई प्रकोप नहीं होता है।

गुजरात अमरेन्थ–3 (जी.ए.–3): एस.डी.ए.यू., एस.के. नगर द्वारा विकसित इस किस्म का अनुमोदन सन् 2008 में गुजरात एवं झारखंड राज्यों के लिए किया गया था। इसके पौधे 130–150 से.मी. ऊँचे तथा 90–100 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 12.50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

आर.एम.ए.–4 : इस किस्म का विकास राजस्थान में स्थानीय जगह मण्डोर से एकत्रित जननद्रव्य (आई.सी. 35647) में से छँटाई करके आर.ए.यू. के क्षेत्रीय केन्द्र मण्डोर, जोधपुर द्वारा सन् 2008 में किया गया था। इसका अनुमोदन राजस्थान, झारखंड, उड़ीसा राज्यों में खेती के लिए किया गया था। इसके पौधे 122 दिन में पककर तैयार हो जाते तथा इसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 13.90 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

आर.एम.ए.–7 : इस किस्म का विकास राजस्थान में स्थानीय जगह से एकत्रित जननद्रव्य (आर.यू.–7–एस. पी.एस.–7) में से छँटाई करके आर.ए.यू. के क्षेत्रीय केन्द्र मण्डोर, जोधपुर द्वारा सन् 2010 में किया गया था। इसका अनुमोदन राजस्थान, गुजरात, उड़ीसा, महाराष्ट्र, हरियाणा एवं दिल्ली राज्यों के लिए किया गया था। इसके पौधे 120 से.मी. ऊँचे होते हैं और 126 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन पैदावार 14.50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी :

भूमि का चयन : चौलाई अम्लीय एवं लवणीय भूमि से प्रभावित होती है इसलिए इसे साधारण भूमि जिसकी पी.एच. की मात्रा 6–8 हो उपयोगी होती है। चौलाई की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी : चौलाई के बीज छोटे आकार के होने के कारण खेत का चयन एवं उसकी तैयारी पर विषेष ध्यान देना जरूरी है। बिजाई के समय मिट्टी भुरभुरी होने से बीज का मिट्टी से सही सम्पर्क हो जाता है इसके लिए दो से तीन बार जुताई करके पाटा लगा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखें कि बिजाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

खाद्य एवं उर्वरक : साधारणतः किसान चौलाई की फसल में सन्तुलन एवं सही तरीके से खाद्य एवं उर्वरकों का सही इस्तेमाल नहीं करते। प्रायः भूमि की उर्वरा षक्ति कम होने के कारण उत्पादन कम होता है। इस

फसल के लिए सामान्य रूप से 50 क्विंटल गोबर की सड़ी हुई खाद, 60 किलो नाइट्रोजन, 40 किलो फॉस्फोरस और 20 किलो पोटाष प्रति हैक्टेयर देने से पैदावार में वृद्धि हो सकती है। गोबर की खाद को खेत की अन्तिम जुताई से पहले एक समान बिखेर कर जुताई करनी चाहिए जबकि उर्वरक अन्तिम तैयारी के समय भूमि में डाल देना चाहिए।

बीज की मात्रा : बीज की प्रति हैक्टेयर मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि किस विधि से बुवाई करनी है। छिड़काव विधि से 2 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर और कतार विधि से 1.50 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर से जरूरत होती है।

बुवाई का समय : चौलाई की फसल रबी एवं खरीफ दोनों में ली जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में मई एवं जून तथा मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर एवं नवम्बर बुवाई का उपयुक्त समय होता है।

बुवाई की विधि : प्रायः किसान पर्वतीय क्षेत्रों में चौलाई की बुवाई छिटकवाँ विधि से करते हैं। इस विधि में समय कम लगता है और सुगमता भी रहती है परन्तु इससे उपज कम मिलती है। अतः अधिक पैदावार के लिए बुवाई हमेषा पंक्तियों में करनी चाहिए जिससे फसल की देखभाल करना आसान होता है और पौधों की बढ़वार अच्छी होने के साथ में पैदावार भी अधिक मिलती है। कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. एवं 2 से.मी. गहराई तक बुवाई करनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंध : साधारणतः खरीफ चौलाई की फसल को वर्षा पर निर्भर फसल के रूप में उगाया जाता है। अतः समय पर उचित वर्षा होती रहे तो अतिरिक्त सिंचाई की आवष्यकता नहीं पड़ती है। समय पर वर्षा न हो तो आवष्यकतानुसार दो से तीन सिंचाई करनी चाहिए। रबी चौलाई को सामान्यतः तीन से चार सिंचाई की जरूरत होती है।

निराई–गुड़ाई : फसल बुवाई के 5–6 दिन से खरपतवार निकल आते हैं। फसल के साथ उगे खरपतवार पोषक तत्व, स्थान, धूप आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं और पौधों के विकास पर इसका प्रभाव पड़ता है। अतः बिजाई के तीन से चार सप्ताह पश्चात निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों को समाप्त कर देना चाहिए।

अन्तः फसल एवं मिश्रित खेतीः चौलाई को मुख्यतः शुद्ध, मिश्रित एवं सहफसलीय के तौर पर उगाया जाता है। चौलाई विभिन्न फसलों जैसे– मंडुआ, सुतारी, मूँगफली, अरहर, राजमा आदि के साथ सहफसलीय खेती के रूप में अधिक प्रचलित है। चौलाई के लिए निम्नलिखित सहफसलीय चक्र उपयुक्त है

क्र. सं.	सहफसलीय	फसल अनुपात	उपयुक्त क्षेत्र
1.	राजमा + चौलाई	2:1	पर्वतीय क्षेत्र
6.	सुतारी + चौलाई	2:1	पर्वतीय क्षेत्र
3.	मंडुआ + चौलाई	6:2	कर्नाटक
4.	मूँगफली + चौलाई	6:1	कर्नाटक
5.	अरहर (कतार 90 से.मी.) + चौलाई	1:2	कर्नाटक, उड़ीसा
6.	अरहर (कतार 75 से.मी.) + चौलाई	1:1	उड़ीसा

चौलाई के लिए उपयुक्त निम्नलिखित फसल चक्र –

चौलाई + सुतारी – गेहूँ (1 वर्ष) चौलाई + राजमा – गेहूँ (1 वर्ष)

चौलाई + लोबिया – गेहूँ (1 वर्ष) चौलाई + सोयाबीन – गेहूँ (1 वर्ष)

कीट–व्याधि नियंत्रण : चौलाई की फसल में विषेष कीड़े एवं बीमारियाँ कम लगती हैं। अतः बीमारियों की सही पहचान करके नियन्त्रण करना आवष्यक है ताकि उपज में होने वाली हानि को रोका जा सके। चौलाई की खड़ी फसल में कभी–कभार प्रणजालक कीट का प्रकोप हो जाता है। यह कीट सूंडी बाली निकलते समय पत्तियों की निचली सतह को खा जाती है जिससे केवल षिरा ही रह जाता है। ये कीट कभी इतना भीषण रूप ले लेती है जिससे फसल काफी हद तक प्रभावित होती है। इसकी रोकथाम के लिए मिथाईल–ओ–डेमिटान या डाई मिथोएट के 0.1 प्रतिषत या क्यूनालफॉस के 1.5 प्रतिषत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

उपज : चौलाई की औसतन उपज 16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यदि उन्नत किस्में एवं इन फसल पद्धतियों को अपनाया जाये तो चौलाई की 40 क्विंटल प्रति हैक्टेयर पर्वतीय क्षेत्रों में तथा 25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर मैदानी क्षेत्रों में पैदावार ली जा सकती है।

आलेख :
डॉ. एच.एल. रैगर एवं डॉ. डी.सी. भण्डारी
अखिल भारतीय समन्वित अल्प प्रयुक्त फसल अनुसंधान नेटवर्क, राष्ट्रीय पादप आनुवांषिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली 110 012

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :
डॉ. डी.सी. भण्डारी, नेटवर्क समन्वयक (अल्प प्रयुक्त फसलें)
एन.बी.पी.जी.आर. (पुराना परिसर), पूसा कैम्पस, नई दिल्ली 110 012
फोन :– 011–25841835, 25848405 (कार्यालय)